

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182856

UNIVERSAL
LIBRARY

182856

प्राण-गीत

गीतज

81.6

172P

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.6 / N 72 P Accession No. G. H. 115

Author नीरज ।

Title प्राण-गति । 1954

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्राण-गीत

[द्वितीय-भाग]

नीरज



[हिन्दी की एक नई चयनिका एवं संस्था]

कलकत्ता-७

प्रकाशक :

ऋ० जै० कौशिक

कमरा न० १२१, माधो भवन

११६।१।१, हरिसन रोड,

कलकत्ता-७

[नीरांजली काव्य-पाठ समारोह संस्करण]

७ फरवरी १९५४

मूल्य एक रुपया

मुद्रक :

स्वस्तिक मुद्रणालय,

२७।१बी, कार्नेवालिस स्ट्रीट,

कलकत्ता-६

दो शब्द

‘नीरज’ के कितने प्रेमियों को उसका असली नाम ज्ञान होगा ? जो भी हो, वह तो व्यक्ति का है ; कवि तो ‘नीरज’ ही है—वैसी ही शीतलता, वैसी ही कोमलता, वैसा ही सौन्दर्य और ‘नीरज’ में भी जिस चीज़ का सर्वथा अभाव है, वैसी मर्म-भेदी प्रखरता भी ।

‘नीरज’ चिन्तक, गीतकार और स्वरकार साथ साथ है—सुघड़ प्रकृति की सलोनी रचना ।

जब कभी आप उसी के कण्ठ से उसकी सुनें तभी पता लगेगा कि ये ‘प्राण-गीत’ सच्चमुच किसी के ‘प्राण-गीत’ हैं । इनकी यही विशेषता है कि ये कण्ठ से निकल कर प्राणों में बस बस जाते हैं । ‘नीरज’ में हिन्दी का ‘अश्व-घोष’ बनने की क्षमता है ।

‘प्राण-गीत’ के पिछले संस्करण में हिन्दी रचनायें ही थीं । इस दूसरे में कवि की अंग्रेजी रचनायें भी सम्मिलित हैं । ये कुछ ‘नीरज’ के प्रशंसनीय अंग्रेजी-ज्ञान की दुन्दभी बजाने के लिये नहीं, किन्तु मात्र यही व्यक्त करने के लिये कि सच्चा साहित्यकार किसी भी साहित्य का द्वेषी नहीं होता । हमारे जीवन में अंग्रेजी का जो अयोग्य स्थान है वह इस बात को आवश्यक ठहराता है कि हम ‘कवि’ की इस मर्यादा को समझ कर ही उसको हिन्दी तथा अंग्रेजी रचनाओं का रसपान करें ।

‘नीरज’ ने अपनी भाषा को इतना कुछ दिया है और ऐसा कुछ दिया है कि हमारे लिये यह स्वाभाविक हो गया है कि हम उससे अभी और बहुत आशा रखें । यह हमारा श्रोता-सिद्ध और पाठक-सिद्ध अधिकार है ।

इस प्रकार अपने श्रोताओं तथा पाठकों की प्यास को उत्तरोत्तर बढ़ाने वाला ‘नीरज’ उत्तरोत्तर विकसित होगा ही—यही उसका पुण्य-प्रताप है ।

धर्मराजिक विहार

कलकत्ता-१२

—आनन्द कौसल्यायन

२९ जनवरी १९५४

अनुक्रमणिका

—*~*~*—

Checked 1969

शीर्षक	पृष्ठ
१—अब ज़माने को खबर करदो कि 'नीरज' गा रहा है	५
२—बिजली की पायल पहिने दिशा ठुमुकती है	६
३—अमर वह व्यक्ति, अमर वह व्यक्तित्व !	७
४—सोनेवाले ! जाग समय अंगड़ाता है	११
५—देशवासियो ! उठो देश ने फिर से तुम्हें पुकारा	१४
६—ठिठका मेरु, महोदधि काँपा, विन्ध्याचल थराँया	१५
७—महामानव गांधी के प्रति	१६
८—मिट्टीवाला	१७
९—हँस कर दिन काटे सुखके, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी	१९
१०—नई सभ्यता	२२
11. Life and Death	23
12. Rise up ! Rise up ! O love in-carnate pride of Everest	23
13. The Swan-song	24
14. The Trial	25
15. When I come to you.....	28
16. I shall have to go	28
१७—जुद्ध हबे ना, जुद्ध हबे ना	३२

अब ज़माने को खबर कर दो कि 'नीरज' गा रहा है ।

जो झुका है वह उठे अब सर उठाये,
जो रुका है वह चले नभ चूम आये,
जो लुटा है वह नये सपने सजाये,
जुल्म-शोषण को खुली देकर चुनौती,
प्यार अब तलवार को बहला रहा है ।

अब ज़माने को खबर कर दो...

हर ढ़लकती आँख का बीणा थमा दो,
हर सिसकती सांस को कोयल बनादो,
हर लुटे सिंगार को पायल पिन्हादो,
चांदनी के कण्ठ में डाले भुजायें,
गीत फिर मधुमास लाने जा रहा है,

अब ज़माने को खबर कर दो...

जा कइो तम से करे वापिस सितारे,
मांग लो बढ़ कर धुंये से सब अँगारे,
बिजलियों से बोलदो घुंघट उघारे,
पहिन लपटों का मुकुट काली धरा पर,
सूर्य बन कर आज श्रम मुस्का रहा है ।

अब ज़माने को खबर कर दो...

शोषणों की हाट से लाशें हटाओ,
मरघटों को खेत की खुशबू सुंघाओ,
पतझरों में फूल के घुंघुल बजाओ,
हर कलम की नोक पर मैं देखता हूँ—
स्वर्ग का नक्शा उतरता आ रहा है ।

अब ज़माने को खबर कर दो...

इस तरह फिर मौत को होगी न शादी,
इस तरह फिर खून बेचेगी न चाँदी,
इस तरह फिर नीड़ निगलेगी न आँधी,
शान्ति का झण्डा लिये कर में हिमालय
रास्ता संसार को दिखला रहा है ।

अब ज़माने को खबर कर दो कि 'नीरज' गा रहा है ।

[२]

बिजलो को पायल पहिने दिशा ठुमुकती है

शायद नभ बादल-राग सुनानेवाला है ।

उल्काओं के रथ पर सवार हो गई हवा
 डस लिया तिमिर-भजगर ने तारों का राजा,
 ज्वालामुखियों का ताज पहिन हँस रही धूल
 है बजा रहा तूफ़ान समुन्दर का बाजा,
 डगमगा रहे पर्वत - पठार लगता मुझको
 नाराज़ धरा को नाश मनानेवाला है ।
 बिजली की पायल पहिने दिशा ठुमुकती है
 शायद नभ बादल-राग सुनानेवाला है ॥

जुड़ रही हलों की भीड़ गली-चौराहों पर
 खिल रहे नम्र डालों में फूल अंगारों के,
 हँसियों में चमक हथौड़ों में आगई जान
 गा रही कुओं पर गगरी गीत मल्हारों के,
 आंधी का झूला डाल जवानी मूल रही
 शायद यौवन सावन बन जानेवाला है ।
 बिजली की पायल पहिने दिशा ठुमुकती है
 शायद नभ बादल-राग सुनानेवाला है ॥

आ रहा पसीना ठण्डे शांत हिमालय को
 कोरिया, मलाया, चीन सभी में हलचल है,
 है उगा रही इन्सान एशिया की ज़मीन,
 नेपाल, स्याम, बर्मा की भौंहों में बल है,
 श्रम ने उँगली पर उठा लिया पूँजी-पहाड़,
 फिर से युग कोई रास रचानेवाला है ।
 बिजली की पायल पहिने दिशा ठुमुकती है
 शायद नभ बादल-राग सुनानेवाला है ॥

[३]

अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

शीश पर धिरे घुमड़ते काल-
 प्रलय के बादल-दल विकराल,
 विधुर काजल-सी काली रात,
 न कोई साथी - सङ्गी साथ,
 कठिन पथ - ध्येय, पन्थ अज्ञात,
 दूर मञ्जिल, अति दूर प्रभात,
 धरा तमग्रस्त, गगन तमग्रस्त,
 दिशा तमग्रस्त, नयन तमग्रस्त,
 पन्थ तमग्रस्त, चरण तमग्रस्त,
 देह तमग्रस्त, वदन तमग्रस्त,
 श्वास की मुक्त पवन तमग्रस्त,
 गीत की अरुण किरण तमग्रस्त,
 कल्पना कलित अतन तमग्रस्त,
 सृष्टि-कण-कण तृण-तृण तमग्रस्त,
 चतुर्दिशि अजगर - श्वास समान,
 फुफुक फुफुकार रहे तूफान,
 तड़कते तड़-तड़ अजड़ पहाड़,
 चड़ड़-चड़ पेड़ रहे चिंघाड़,
 धड़कते भूमि-खण्ड वन - खण्ड,
 दरकते दुर्ग अटूट अखण्ड,
 रोकते राह पहाड़ - पठार,
 भाड़ - भंखाड़, उजाड़ कछार,
 न नभ में ज्योति, न जग में ज्योति,
 न कर में ज्योति, न मग में ज्योति,
 विघूर्णित उदधि पर्वताकार,
 तोड़ता सृष्टि - सदन के द्वार,
 काँपते स्वर्ग - नरक के छोर,
 किन्तु वह कौन लक्ष्य की ओर—

बढ़ रहा जो निज सीना तान,
 चीर तम ज्योतिष बान समान ?

अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

(२)

सामने मन - मन्दिर वीरान,
 धधकता मरघट - सा सुनसान,
 देवता का शव कफन - विहीन,
 धूल में पड़ा, धूल - सा दीन,
 हृदय की चिर - सञ्चित अभिलाष,
 बुझे जीवन की अन्तिम आस,
 चिता - सी धधक विदग्ध अधीर,
 जल रही उर-यमुना के तीर,
 चपल अनगिन तुतले अरमान,
 फूल सब ओर अङ्गार - समान,
 धधक धधकाते मरघट - ज्वाल,
 जला सुधि - साँसों के कङ्काल,
 स्वप्न के अनगिन छाया—प्रेत,
 मौन कर - कर प्यासे संकेत,
 हृदय में उपजाते भय-भ्रान्ति,
 अनन्त अशान्ति, अनन्त अशान्ति,
 चीखता अन्ध - उल्लूक - अतीत,
 निशा भयभीत, दिशा भयभीत,
 न वह कोकिल कलकण्ठ—पुकार,
 न वह अब मधुकर की गुञ्जार,
 न वह अब पायल की भंकार,
 कहाँ वे स्वर मधुमय सुकुमार ?
 पढ़ सब बन कर माटी - धूल

फूल बुलबुल के बने बबूल,
 प्राण में हर - हर हाहाकार,
 श्वास में रुद्ध चीख - चीत्कार,
 नयन में थिरक रही जलधार,
 देह का रोम - रोम अङ्गार
 उठ रहा मस्तक में तूफान,
 न तन का ध्यान, न मन का ध्यान,
 अधर पर ले फिर भी मुस्कान,
 गा रहा जो नवयुग के गान—
 अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

(३)

उगलता अङ्गारे आकाश,
 जल रहे दिशि-दिशि, गृह-आवास,
 पवन मारता अग्नि के बाण,
 धरा म्रियमाण, सृष्टि म्रियमाण,
 पेड़ जलते, पथ रहे कराह,
 सिसकते वन, भू मरती आह,
 चीखती चील ताप से त्रस्त,
 सकल कण-कण तृण ऊष्माग्रस्त;
 शपित - तापित हो छिन्न - मलीन,
 स्वयं ज्ञाया भी कुँचित - पीन,
 मौन तरु, मौन नगर - वन-ग्राम,
 बनी दोपहर मरण की शाम,
 मौन पनघट - तट - नौकाधार,
 मौन मधुवन मधुकर - गुंजार,
 बल रहा अमिल भ्रंभावात,
 दग्ध सब लता - बेलि - तरु-पात

किन्तु वह कौन कौन अधनम्र ?

देह - तन भग्न, प्राण - मन मग्न,

भाल में चिन्ताओं की भीड़,

हृदय में लाचारी की मीड़,

नसों में शोषित सूखा रक्त,

खींचने में भी खाल अशक्त,

सफेदी में केशों की श्रान्त,

भांकती छाया - मृत्यु अशान्त;

बुझ रही दीपक - लौ - सी दीठ,

पीठ में पेट, पेट में पीठ,

पीत पतझड़ - सा कंपित गात,

पदों में साँझ, नयन में रात ।

किन्तु फिर भी जो ले हल-बैल,

भूमि पर स्वयं बीज - सा फ़ैल,

सूँच श्रम से बंजर - वीरान,

खाद - तन की दे पुलकित प्राण,

जोत कर जौ-जौ तिल-तिल भूमि,

धूल - माटी अधरों से चूम,

“प्राणमय अन्न, अन्नमय प्राण”,

सूत्र का तन धर मूर्त्तितमान,

स्वयं भूखा रह कर दिन-रात,

स्वयं प्यासा रह कर दिन - रात,

कर रहा भूखे जग को दान,

कर रहा प्यासे जग को दान,

अन्न का दान, प्राण का दान,

नीर का दान, वस्त्र का दान—

अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

[४]

सोनेवाले, ! जाग समय अंगड़ाता है
धरती उठती ऊपर, नीचे स्वर्ग उतर आता है ।

लगा हुआ कारवाँ क्रान्ति का
चलने की तैयारी में
अंगारों के फूल खिल रहे
सांसों की फुलवारी में

मचल उठा तूफान पाँव में
पथ ने ली अंगड़ाई है
आँधी के कंधे पर बैठी
मंजिल उड़ कर आई है

नई सुबह हो रही कि सूरज किरण सितार बजाता है ।
सोनेवाले ! जाग समय अंगड़ाता है ॥

खेतों में सज रहीं बरात
खलिहानों में शादी है
डाल फसल का घूँघट बैठी
मिट्टी की शइज़ादी है

रचा रही है मेंहदी खुरपी
कुमकुम दिया कुदाली ने
हल ने बाँधा मौर, जोड़ दी
गाँठ ज्वार की बाली ने

मस्त किसान खड़ा मेढ़ पर बिरहा-कजली गाता है ।
सोनेवाले ! जाग समय अंगड़ाता है ॥

ईश्वर भाग गया मन्दिर से
मस्जिद भी अब खाली है
श्रम का नया देवता जन्मा
घर-घर दीवाली है

हिन्दू की काशी सहमी है
मुसलमान का काबा
आज प्रेम ने किया आदमी
के मज़हब पर दावा

जात-पाँत की चट्टानों से नया खून टकराता है ।
सोनेवाले ! जाग समय अंगड़ाता है ॥

बदल रही है कलम पुरानी
दावातों को, स्याही को
है तूली दे रही नई
तस्वीर शहीद-सिपाही को

नई अजन्ना गढ़ने में रत
छेनी नये ज़माने की
गायक के अधरों पर गुनगुन
ताने नये तराने की

रूठे हुए घुघुरुओं को ताण्डव हँस कर दुलराता है
सोनेवाले ! जाग समय अंगड़ाता है ॥

गंगा में आ रही बाढ़
जमुना के जल में हलचल है
सिंध जोश में, क्रुद्ध नर्मदा—
की आँखों का काजल है

काश्मीर की नरम ऊंगलियाँ
कवच बुन रहीं इस्पाती
लिखी खून से भेज रहा है
दक्षिण उत्तर को पाती

अमृत बरसे शीघ्र नहीं तो रेगिस्तान रिसाता है ।
सोनेवाले ! जाग समय अंगड़ाता है ॥

टूट रही प्राचीन रूढ़ि के
गढ़ का गुम्बद हिलता है
खंडहर की छाती से हंस कर
अंकुर नया निकलता है

काँप रहे सिंहासन, मुकुटों-
को बेहोशी आती है
नये सफों पर नयी ज़िन्दगी
क्रान्ति आँकती आती है

बनता खुद इतिहास नहीं, श्रम ही इतिहास बनाता है ।
सोनेवाले ! जाग समय अंगड़ाता है ॥

[५]

देशवासियो ! उठो देश ने फिर से तुम्हें पुकारा,
तुझ तिरंगे ने माँगा है फिर से लहू हमारा ।

फिर से आज अशोकचक्र यह चाह रहा कुर्बानी,
फिर से खौल उठा है देखो गङ्ग-यमुन का पानी ।

लाल किले की दीवारों में फिर से चढ़ल-पढ़ल है,
फिर से पड़ने लगा हिमालय की मौहों में बल है ।

उठो शत्रु ने सोमनाथ पर फिर से दृष्टि उठाई,
उठो उठो पानीपत ने है फिर से ली अंगड़ाई ।

पहन रही केसरिया बाना फिर से हल्दीघाटी,
फिर से करती है प्रताप का तिलक देश की माटी ।

काशमीर पर, अरे स्वर्ग पर ! शैतानों की छाया,
यह जिहाद का नाद मोहम्मद का मस्तक शरमाया !

चिन्ता क्या है अभी जागता है राणा का भाला,
अर्जुन का गाण्डीव अभी पहने मुण्डों की माला ।

अभी शिवाजी की तलवार शत्रु-शोणित की प्यासी,
अभी भीम की गदा गरजती है दिशि दिशि अविनाशी !

अरे कृष्ण का चक्र-सुदर्शन अभी नहीं सोया है,
अभी राम का बाण नहीं इतिहासों में खोया है !

तुम्हें शपथ आजादी की, आजादी के क्षण-क्षण की,
तुम्हें शपथ है राजघाट की मिट्टी के कण-कण की,

तुम्हें शपथ है तीस जनवरी के दिन बलिदानी की,
बापू की छाती से निकले शोणित अभिमानी की,

तुम्हें शपथ ह विधवा बहिनों के गीले अश्रुल की,
तुम्हें शपथ है माताओं की सूनी गोद-विकल की,

तुम्हें तुम्हारे उन्नत मस्तक की सौ बार शपथ है,
तुम्हें तुम्हारी तरुणाई की अन्तिम बार शपथ है,

धूसे का बदला अशोक के बज्र-चक्र से लेना,
देना सौ सौ शीश, देशकी तिलभर भूमि न देना ।

(आसाम में एक शरणार्थी महिला की दशा देख कर पण्डित

नेहरू की आँखें एक बार छलछला आई थीं ।)
 ठिठका मेरु, महोदधि काँपा, विंध्याचल थराया,
 अचल हिमालय के मस्तक पर झलक पसीना आया ।
 सीता का सिन्दूर रो उठा सरयू के कूलों पर;
 राधा की कंचुकी यमुन में डूब गई आहें भर !
 राजघाट की सत् - समाधि से बही अश्रु की धारा
 सिहर उठा चिर मूक मौन सा शांतिनिकेतन सारा ।
 तुङ्ग तिरंगे की पलकाँ में बरसातें लहराईं,
 कल ओ युग के प्राण तुम्हारी आँखें जब भर आईं ।
 तुम रोये थे नहीं, भीष्म का साहस कल रोया था,
 अजुन ने गाण्डीव हृदय के आँसू से धोया था ।
 कल अशोक के सिंहासन की आँखें भरी भरी थीं,
 पूरब के सूरज के गालों पर बूँदें बिखरी थीं !
 कुक्षेत्र के कर्मव्रती का धीरज कल छूटा था,
 रामराज्य का स्वप्न राम के सम्मुख ही टूटा था ।
 कल तुम नहीं समस्त एशिया मूक अवाक खड़ी थी,
 युग की माँ - नारी जब चिर असहाय - विपन्न पड़ी थी ।
 कल था जड़ इस्लाम, झुकी थीं मस्जिद की मीनारें,
 ज़मज़म के पानी में बहती थीं लाशें तलवार !
 पड़े सफ़ों पर थे कुरान के धब्बे गरम लहू के,
 आज्ञानों में गूँज रहे थे मुरदों के स्वर भूखे ।
 शाहजहाँ की लाश कराह रही थी ताजमहल में,
 अकबर का दिल चीख रहा था मज़हब के दलदल में ।
 हाय बहिन का घूँघट भाई ने जब स्वयं उठाया,
 क़त्रस्तान बन गया पाकिस्तान विश्व शरमाया ।
 की जब माँ के साथ करौंची ने बल से मनचाही
 लगी मोहम्मद के मुख पर काले कलङ्क की स्याही !
 मज़हब के दीवानो ! है यह धब्बा इतना काला,
 खतरे में इस्लाम, तख्त इस्लामी उठनेवाला ।

[७]

महामानव गांधी के प्रति

कौन कहता है कि तुमको खा गया है काल ?
 रक्त से तुम लिख गये वह मुक्ति का इतिहास,
 भूमिका जिसकी बना खुद मृत्यु का उल्लास,
 काल जिसका पृष्ठ, अक्षर शब्द प्रति भूचाल !

कौन कहता है कि तुमको खा गया है काल ?
 तुम चले, चलने लगे चिर अचल अजड़ पढ़ाड़,
 तुम रुके तो रुक गयीं सकुचा समय की बाढ़,
 तुम उठे तो उठ गया भूनत हिमालय-भाल !

कौन कहता है कि तुमको खा गया है काल ?
 तुम अमर मनुजत्व वह देवत्व जिससे हीन,
 वह सृजन के हास हो तुम नाश जिसमें लीन,
 नाद वह तुम मूक जिसको सुन हुए वाचाल !

कौन कहता है कि तुमको खा गया है काल ?
 मृत्युजित तुम वह कि जिसका श्वास हर तूफान,
 ओठ में जिसके दबी ज्वालामुखी - मुस्कान,
 भाल जिसका नभ, दिशाएँ देह, पग पाताल !

कौन कहता है कि तुमको खा गया है काल ?
 देह तजकर आज जो तुम मौन अन्तर्ध्यान,
 अर्थ जिसका यह कि कण-कण में हुए लयमान,
 गेह जिसका अब न मिट्टी किन्तु विश्व विशाल !

कौन कहता है कि तुमको खा गया है काल ?

[८]

मिट्टी वाला

घर-घर पर आवाज लगाते मिट्टी ले लो मोल,
 गांव-गांव इस धुन्ध-धूप में भूखे-प्यासे डोल,
 चिकनी, खुदरी, गीली, सूखी, काली, पीली, श्याम,
 लाद गधों पर तरह-तरह की मिट्टी यह बेनाम,
 खोज रहे तुम किस सौदागर को ओ मिट्टीवाले !
 कौन यहां जो इस अनमोल वस्तु का मोल चुका ले !
 अरे कहा क्या—बस दो पैसे एक गधे का दाम,
 कुछ कम भी हो सकता है यदि ले लूं माल तमाम,
 यह कैसा व्यापार, अरे यह कैसा है उपहास !
 दो पैसों में बेच रहे तुम मिट्टी का इतिहास !
 यह कैसी मजबूरी भाई यह कैसी लाचारी !
 मिट्टी की सम्पत्ति बिक रही कुछ पैसों में सारी !
 आसपास ही देख रहा हूँ मिट्टी का व्यापार,
 चुटकी भर मिट्टी की कीमत जहां करोड़ हज़ार,
 और सोचता हूँ आगे तो होता हूँ हैरान,
 बिका हुआ है कुछ मिट्टी के ही हाथों इन्सान,
 ये एटम, ये टैंक-गनें, ये गैस-मशीनें, यान,
 कुछ मिट्टी के लिये कर रहे मिट्टी का बलिदान,
 और बाँटने को मिट्टी से बस मिट्टी का प्यार,
 खड़ी बीच में है मिट्टी के लोहू की दीवार,
 यह चाँदी की चहल-पहल, यह मय-मीना का शोर,
 यह पेरिस की रात, कोरियो की यह काली भोर,
 यह चितवन की चकाचौंध, यह चुम्बन के बाज़ार,
 ताम्रकाल वह, लौहकाल यह, सोने का संसार.

ये भिखमंगे, ये नंगे, ये तुन्द महाजन सेठ,
 यह अमरीका, यह ब्रटेन, यह डालर रोटी-पेट,
 मन्दिर, मस्जिद, गिरजेघर, ये भक्त और भगवान,
 बस कुछ मिट्टी के लिये लगाये सब अपन दूकान ।
 कलाकार, पैगम्बर, नीतिक, बुद्ध सिकन्दर सारे,
 सभी ज़िन्दगी में मुट्टीभर मिट्टी से बस हारे ।
 और उसी मिट्टी को तुम यों लुटा रहे बेमोल,
 चीख उठेगी कब्र किसी की अरे सभलकर बोल ।
 अरे सँभलकर बोल, अभी सोयी है थककर लाश,
 भरे फूल के पास खड़ा है बुलबुल का उच्छ्वास !
 कैसा है वह कुम्भकार, यह कैसा क्रूर विचार,
 दर-दर मारी फिरे गर्धों पर मिट्टी यह सुकुमार !
 यह अचरज की बात नहीं, यह कोई बात अजानी,
 'मिट्टी को अच्छी लगती है मिट्टी की कुर्बानी ।'

[६]

हँस कर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी !

(१)

मधु का स्वाद लिया है तो विष का भी स्वाद बताना होगा
खेला है फूलों से तो शूनों को भी अपनाना होगा,
कलियों के रेशमी कपोलों को तूने चूमा है तो फिर
अङ्गारों को भी अधरों पर धर कर रे ! सुस्काना होगा,
जीवन का पथ ही कुछ ऐसा जिस पर धूप छाँह संग रहनी
सुख के मधुर क्षणों के संग ही बढ़ता है चिर दुःख का क्षण भी !
हँस कर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी !

(२)

गहन कुहू को अँधियारी में कब तारों की छवि मुरझाई ?
काँटों के कटु अञ्चल में कब कलि की सुन्दरता अकुलाई ?
बन्द हुई कब पपीहे की 'पी' बज्र बिजलियों के पतझड़ में,
सरिता की चल चञ्चलता कब सागर के सम्मुख शरमाई ?
तू फिर क्यों खो बैठा साहस देख घिरा सिर पर दुख-बादल
और भुला बैठा क्यों तुझमें शेष अभी जीवन, यौवन भी !
हँस कर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी !

(३)

शूलों का अस्तित्व जरां है फूल वहीं तो मुस्काना है
जहाँ अँधेरे की सत्ता है, जुगनू वहीं चमक पाता है,
जीवन पूर्ण नहीं है पाकर केवल कुछ सुख के ही मृदु क्षण
सुख भी तो सुख कहलाता तब जीवन में जब दुख आता है,
इससे जो कुछ है सम्मुख वरदान समझ उसको मेरे मन ।
और देख फिर खोजेगा सुख तेरे दुख की छाँह शरण ही ।
सुख के दिन सपने थे केवल सत्य मनुज ये दुख के दिन ही !

(४)

सुख के दिवस दिये थे जिसने देन उसी की ये दुख के दिन,
जिस घट से छलकी थी मदिरा, शेष उसी घट के ये विषकण
यह अचरज की बात न कोई सीधा सादा खेल प्रकृति का
मधु ऋतु से विक्रय पतम्बर का सदा किया करता है मधुवन
यह क्रम निश्चित इसे न कोई बदल सका है, बदल सकेगा,
इससे ही तो कहता हूँ हैं व्यर्थ अश्रु और व्यर्थ रदन भी ।
हँस कर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी !

(५)

मुस्काता ही रहा सदा तो मुश्किल भी हल हो जायेगी,
रुके अश्रु सी थकी जिन्दगी, तूफानों की गति पायेगी,
पथ की ऊँचाई, नीचाई जिसे देख कर डरता है मन
क्षण भर में तेरे पग से, रुँद रुँद कर समतल हो जायेगी,
दुख के सम्मुख मुस्काने से दुख ही सुख लगने लगता है,
बन जाता विश्वास विजय का थका पड़ा मुरदा सा मन भी ।
हँस कर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी !

(६)

हँस कर या रोकर तय कर, तय करना है तुम्हको ही यह मग,
तुम्ह पर हँसने का अवसर वह ताक रहा है छिप छिप कर जग,
लक्ष्य-प्राप्ति से पूर्व कहीं जो रुका याद रख, जग के संग संग
तुम्ह पर खूब हँसेंगे तुम्हको प्यार सदा करने वाले हग,
और पंथ पर चलते चलते ही यदि पथ की धूल बना तो
तेरी खाक देख शरमायेगा युग-मस्तक का चन्दन भी
हँस कर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी !

(७)

सांभ सूर्य की सांध्य-किरण जो तम की चादर में खो जाती
वही प्रात ऊषा बन कर फिर तम के घूँघट से मुस्काती
तम से दूर ज्योति जीवन की ज्योतिहीन है, तम सी ही है,

क्योंकि बुझी सी ही जलती है दिन में दीपक की मृदु बाती,
माना यह प्रकाश जीवन में भरता है युग-दिन की हलचल,
किन्तु थके मन को देता विश्राम निशा का सूनापन ही ।
सुख के दिन सपने थे केवल सत्य मनुज ये दुख के दिन ही ॥

(८)

सुख में थी आसान जिन्दगी इससे उसकी याद सताती,
दुख में कठिन बना है जीवन इसीलिये पीड़ा अकुलाती,
किन्तु याद रख, एक समय है जब अभाव खलता है दुख का,
और खोजने पर भी पीड़ा झाँह न तब दुख की छू पाती,
जीवन का वह निर्मम क्षण यदि आज नहीं तो कल आयेगा,
सँभल मनुज ओ ! तुझे छल रहा प्रति पल तेरा मन दुशमन .ही ।
सुख के दिन सपने थे, केवल सत्य मनुज ये दुख के दिन ही ॥

(९)

सुख का ऋण तो चुका दिया है तूने लेकर ये दुख के क्षण,
किन्तु शेष है अभी चुकाना सबसे अधिक कठिन दुख का ऋण,
कुल ले देकर नहीं, किन्तु यह दुख का ऋण चुकता है ऐसे—
अधरों पर मुस्कान सजी हो नयनों से भरते हों जल-कण,
जो हँसकर मुस्काकर दुख का यह ऋण कठिन चुका लेता है,
हार मान लेते हैं उससे सुख-दुख जीवन और मरण भी ।
हँस कर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी !

(१०)

कल नभ पर छाई थी ऐसी सघन घनों की काली चादर,
ऐसा लगता था न कभी फिर मुस्का पायेगा शशि सुन्दर,
किन्तु आज ही उस तम का है नाम निशाँ तक शेष न जग में,
जड़ा खड़ा तारक-मणियों से जगमग - जगमग करता अम्बर,
अचरज का मेला है यह जग कभी अँधेरा कभी उजेरा,
मधु में यहाँ छिपा रहता है काल-हलाहल का क्रन्दन भी,
हँस कर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी ॥

(११)

टूटे वे सपने ही जब लख जिन्हें अमरता थी शरमाई,
सूखा वह मधु ही जब, जिसके सम्मुख अमर तृषा सकुचाई,
छूट गये वे सम्बन्ध⁽¹⁾ ही जिनके नयनों की स्नेह-झाँह में—
रोती सी जिन्दगी फूल की मुस्कानें भर कर मुस्काई,
दे न सके जब साथ पथ पर वे अमरत्व-शिला के पुतले,
फिर रे कब तक घिरा रहेगा जीवन के नभपर, दुख-घन भी—
रहे न जब सुख के ही दिन तो कट जायेंगे दुख के दिन भी ॥

[१०]

नई सभ्यता

सांसों में ज़हरीली गैसों, स्वर में माइक्रोफोन,
आँखोंपर कैमरा, कान में पहने टेलीफोन !
दुबली-पतली गर्दन में गोली - गोलों के हार,
पंख लगे बाँहों में चटपट उड़ने को तैयार !
चितवन में बिजली, चलने में टैकों का रव-घोष,
बातचीत में उबला पड़ता युद्धों का आक्रोश !
अधरों पर है रक्त-लिपिस्टिक की लोहित मुस्कान,
द्विपा सर्जरी का कलाइयों में सारा विज्ञान !
एक हाथ में मौत, दूसरे में लिटरेचर डम्ब
बाँधे हुए कंचुकी में हाइड्रोजन-एटम बम्ब !
छिपा लौह-वस्त्रों में डालर-सा कागजी शरीर,
आसपास चल रही मशीनों, अखबारों की भीड़,
घृणा और बारूद बाँटती हँसती-मुस्काती है,
करो वैलकम नई सभ्यता की देवी आती है !

[11]

Life and Death[*Translated from original Hindi*]

What is this life ? a wreath of fancies dear
 That weaves the Time to offer at shrine of death,
 Each day is petal, flower is each year,
 Each knot of the thread is every passing breath.
 The colours black and white are night and day,
 The shades serene are autumn and the spring,
 The tears dripping are dew-drops of pure ray,
 And hour that comes and goes is bird on wing.
 The fragrances fine are virgin longings sweet,
 The dark-eyed dreams are bees humming around,
 The handsome hopes are pollens pure and neat,
 And nectar is the love of heart profound.
 O man then why to weep when life is lost,
 Death's nothing but the wreath-completing knot.

[12]

Rise up ! Rise up ! O Love-incarnate-pride of Everest

The time is sick and groans with pain,
 Blood stalks the land of flowers,
 Earth is raped by bombs and tanks,
 And hatred writes the history of man.
 Love weeps on the drunken graves,
 Truth and Beauty kidnapped in daylight,
 Faith is stifled ere it is born,
 Peace is hanged on the gallows of swords.
 Hunger eats the very flesh of life,
 Unemployment employs the suicide,
 Morals are preached by immoral lips,
 And Justice awaits whips—golden whips
 behind silver bars.

The swift current of reason in desert is lost,
A digger's cut religion has made its goal,
Art, Literature all wander as homeless dogs,
And politics play the game of rogues.

Wake up ! O Wake up ! the Saviour of Truth,
Lest oceans may surge up and swallow the globe,
Rise up ! Rise up ! O Love-incarnate-pride of Everest,
Or passions make the beast of man.

[13]

The Swan-Song

Today when I have completely lost the power of my wings, O you cruel captor of hearts ; you have thrown open the door of my cage and bid me to quit it at once.

But tell me now, where shall I build my nest in the open sky and air, where shall I sing those songs of golden dawn which brought life once to the lifeless autumn of earth ; where shall I fly with those songful wings which once crossed even the impassable boundries of hell and heaven. Would those fellows of feathers now allow me the nocturnal touch of their lips and cheeks that thrilled my veins like the sweet scented air of early morn that causes tremor in the tender limbs of a child-bird. Where those gardens, groves, those evergreen trees, those dancing leaves, those pattering rains, those blooming buds, those milky streams, those snow-capped hills, those singins stars, which kept my heart captive from life to life, shall I see and enjoy ? Ah no, no, never.

Have I now lost that magic charm which allured you once to run after me day in and day out. Have I now forsaken that silver garland of songs and tunes whose eternal smell once made you mad to place your golden cage in the trodden dust of my land and that one....

You know very well O Stealer of my beauty, that when you first separated me from my friends and put me in this

cage, how I wept, how I sighed and sobbed, how I entreated and begged and fluttered my wings to see myself free once again in the dark thin shades of trees? But in vain, in vain, you laughed and with deceiving kisses and caresses implored me to stay, to stay for ever on the false oaths of love and affection. I peer into darkness now to touch once more the silken fringe of those oaths. But where are they, ah, where are they vanished now ?

So 'Life remembers and Time forgets'. I too forgot the gifts of past and stealthily stole out of the hushed land of smothered memory to this land of false and flattered love. And now when I contended myself to feel at home in this cage, you wish me to exile even from this forced abode. O the ravisher of my freedom ! Now my life is dead, my songs are mute, my meadows are barren, my spring is autumn and I myself am the deadliest foe of mine beyond the bars of this cage. For so old in age has grown the solitude of my slavery that now for me the slavery is life and freedom death, slavery is life and freedom death, Ah, only slavery is life and everything else is death.

[14]

The Trial

On the days' end when commenced proceedings of the Supreme Court, the Chief Prosecutor unfolding the scroll of allegations before the President of the Immortals and pointing towards a man loudly proclaimed :

“That man ; My Lord ! who stands in tattered finery in the forefront row of culprits with head held up high and pale wrinkled face is the chief accused of the day. He has committed, besides many other, such a great crime against the law of this court that none could dare till today.

He was born a poet and was the master of the innumerable vast treasures of the Universe. All the secrets of Nature were open to him. He had everlasting store of stars, dreams, sighs, songs; cadence, refrains, music, art in the hut of his fancy. Yet he sold all his art, all his poetry, all his literature, all his prestige and honour for a few pieces of gold. I, therefore, impeach him in the name of literature of all the ages, I impeach him in the name of poets and poetry of all the races. I impeach him in the name of Nature, in the name of Art, in the name of Beauty, in the name of Love, in the name of this great court of Justice whose faith he has betrayed for nothing and lastly in the name of mankind, in the name of his own sweet name and in the name of his motherland whose graceful mortality he has disgraced by his immortal fame.

For a moment there was lull in the assembly when breaking the silence of the court the judge murmured on his seat, 'Was it so?'

'Yes Your honour'—slowly said the poet.

'Have you to say anything in defence?' questioned the judge again.

'A word My Lord'—was poet's reply and then moving proudly the poet reached the dock and began:

"Truly My Lord! I was born a poet and owned the kingdom of this great colourful vast. Sky was my father, earth was my mother, Horizon was my home, beauty was my existence, love was my life, poetry was my caste, art was my religion, fancy was my beloved tears, were my songs and songs were my messengers.

"Experience was my school, sorrow was my teacher, affliction was my lesson and bereavement my test.

"Always night used to swim in the ocean of my eyes like a teardrop, always dreams played hide-and-seek in my heart, always stars danced on the petals of my eyes and always moon smiled on my silence.

“Clouds brought for me the message of some unknown land, Oceans surged in me the tide of ineffable pathos, the waves carried for me the sentiments of fathomless abyss, the storms showed me the anger of my God and lightnings the flash of His curved royal sword.

“The astounding peaks told me the story of heaven, the tiny currents and fountains sang for me the songs of snowy hills, the South winds whispered in my ears the secret of unexpressed love and the bird on wing and the long aslant stretched shadows of trees filled me with sighs of pain.

“I dwelt in heaven, I played with stars, I walked on milky-way but alas my feet rested on the dust, Man was my name, bread was my defination, empty was my belley and born I was in India, the country of fools, where people worship the literature but do not live it.

“And yesterday when there was burning heat of hunger in me I begged every subject of my empire to apease it but none could. I searched every corner of my kingdom but in vain. And alas then I turned to the market-place where trade of gold and silver was at its extreme. There I found bread, the portrait of my existence. And I had to but sell myself for a few pieces of gold to purchase it. That’s my story and explanation, give your due consideration to it my God of Justice.”

The judge listened motionless and when the poet finished he commented. ‘You have in every way pleaded not guilty but partly you have been successful and not in full, I therefore, acquit you with this remark—that you will love he will hate you, to whom you will kneel, he will kick you, to whom you will wed your faith, he will deceive you. You will weep, always weep not in tears, but in songs, you will talk not in presence but in silence, you will live when the world has gone’.

The assembly then adjourned sine die and poet moved back saying—“Accepted, Accepted, All accepted.—”

[15]

When I come to you I wish to speak a thousand thing but utter not a word and silently lower my eyes in simple fear that before the strange and strong assembly of thoughts in the court of my heart, my tongue might tremble, my lips might falter and I may not say what I wish to say and that you may misunderstand me.

When you come to me in the early adolescence of your beauty, concealing thousand cups of fresh wind in your soft dark eyes, with a rosy blush on your untouched cheeks and the scented shade of boisterous blooming spring under your light blue apprael, I quietly avoid your tender looks, lest your virgin nearness to me, the spoused loneliness of my house, your frail alluring arms and the nectar of your lips, may force me to hug you hard and kiss your lips and you may take it ill.

When you ask me to sing I immediately follow your words but break the melody in the middle, before the song is actually over, simply because you may not know how I conclude it. Parhaps it will pain you My Love ?

[16]

I Shall Have To Go

Yesterday when I received the call from the yonder land, I asked you severally Soul of my Soul ? "should I go"? but you with your usual acquiescence neither said "Yes" nor "No"?; but why I donot know, and, think I shall have to go.

When the golden day-bird flying and flying towards the west folds its weary wings up on the topmost peak of the village hill and the first ray of the moon peeps through the hushed shadows of the forests, the bullock bells ring near the outer skirts of the village, the tired sun comes to the flower queen and in a mild trembling tone begs of leave imprinting a kiss upon her lips. The flower-queen with tear-washed

voice says, beg not leave so early my Love ? the dreams of my heart still linger like tears in my eyes, my beauty is yet only half-unfolded and I have yet not known the pleasure of life. Beg not leave my dream of youth? and stay till I am full. At this the sun, apace on its path, calling back the rays and glory of the day, speaks. "The time of my play is over and the time for the moon and night-flower comes, I wish not go but helpless am I, my Heart? for the stage is one the actors two each allotted with different roles, and the cruel time has already set a limit to our end, hence to vacate this stage for the moon I shall have to go, I shall have to go.

When the day wanes, the brightness of the day is replaced by darkness. The moon by and by swims through the endless blue. The night flower seeing her lover coming with a dream in his eyes, dresses herself in the best of her beauty braids her hair, pins them with yellow rays, drapes her night bed with silver and sprinkles on it the sweet scent of saffrons and pouring in dark eyes the wine of youth awaits the arrival of the night-lord. The night lord comes and whole night plunders in abundance the beauty and wine of Kumudini, the whole world is plunged in a perpetual silence, the air stirs not, the leaves rustle not, the whole universe sleeps and only love awakes under the thin shadow of the garden trees. But till the meeting of the Moon and Kumud ripens into a union, and love gets its final shape, the dawn uninvited steals into the room of romance. As soon as the moon feels the first grey of morning, he rises up and begs leave of the night queen. The night queen, with entreating arms implores the moon to stay. But the fading moon collecting its dying beams says, "O my Heart ? I cannot stay, for my time is over, and the time for the sun comes. Hence to make room for him in this garden of romance I shall have to go."

One day smiles spring in the garden of the world, the naked trees are covered with redder leaves, the parched earth is shrouded on all sides by young green grass. the pale gardens give birth to variety of flowers and the whole world

begins to sing but till the beauty of the earth is wedded to immortality, the spring begs the universe of leave, and the whole beauty of Nature vanishes like a dream in the morning. The flowers with their dust-stained petals cry, "O when you had to rob the beauty of our dreams thus why did you at all dip us in the passionate scent," the koyal, uncovering its veil of silence and shyness weeps, "O the song? of my melody when you had only to make us weep in the last, why did you at all give such a melody in my throat." But the spring with a terrible smile remarks—the end of song is tears, the aim of beauty is to fade away and the outcome of pleasure is pain and I had come to teach you but this much and that I have done, now comes the Autumn who will show you all this in its fearful nakedness. Hence to bring Autumn to island of flowers, I shall have to go.

The autumn comes and goes back unfolding before the world the ghastly nudity of the earth, the hot summer comes, and goes back adding something more to its fury. And then comes the season of rains, and the clouds. The panting earth gets a new life again and the whole universe is turned green again. But till the thirst of the earth is completely quenched prepares the cloud for its journey back, the thirsty earth cries, "O my life, by pouring a few drops in my throat you have increased my thirst more and if you now wish to go do quench it." But the cloud darting stones and lighting shafts upon the earth cries in thunder, "Only to increase your thirst I shall have to go."

What then My love? I too shall have to go without getting your permission and against my will, Yes, I shall have to go, for the time's wild call is irresistible. There stands somebody behind this vast darkness, waiting for the spot, I now stand upon so to vacate this place for that unknown I shall have to go. The revolving journey of earth which has brought us face to face, it is just possible, might itself tear us asunder and throw us at such a distance in between us that even our shadows might not kiss. When today I beg

leave of you from such a distance, I feel that my heart is breaking open my breast. What shall be the fate. My darling when we shall be separated after our complete union. O No. I tremble even at the fancy of that cruel hour. Hence to keep the dream a dream and illusion an illusion, I shall have to go.

Even if I do not wish I shall have to go, for the cruel time has no mercy upon our dreams. It crushes down under its iron heels all our desires and dreams mercilessly. I perceive that where I now stand I shall not be there after a moment and I am unconsciously running towards some unknown land. The every moment of our life and the every speck of dust is dynamic and in fact in our journey of life, it is not our foot, but the path that itself moves. And to learn this new doctrine of life, I shall have to go.

Today when we depart, we should not weep my friend, for the path before us is quite unknown and your tears will only darken our eyes. So Let us smile and that ineffable and immortal smile we should pour in the cups of our life, that when we find ourselves on our known path abeted by circumstances and faced by difficulties and darkness of time and fate, we should seek our path in the light of these smiles. Hurry up my friend for the time is come, my horse stands saddled at the gate and somebody unknown is knocking at the door. Hurry up for I shall have to go, I shall have to go.

“जुद्ध हबेना, हबेना जुद्ध हबेना”

[हिन्दी कविता ‘अब युद्ध नहीं होगा’ का बंगला अनुवाद]

अनुवादक : प्रोफेसर विष्णुपद भट्टाचार्य

आमि शुधु भाबि —

आमि शुधु भाबि जोदि शुरू हय तृतीय विश्व युद्ध,

एइ—नोतुन दिनेर नब सृष्टिर की हबे ?

आमि शुधु भाबि शोणित-सिक्त हइले धरणी बक्खो

किसानेर हाते लांगलेर दशा की हबे ?

एइ राशि राशि गोलापेर हासि, गन्ध-बिसारी कानन,

एइ—जादु-भरा-आँखि रूपेर कलिका कत जे भोलाय नयन ।

एइ जे पागल वायु-चंचल धानेर शीष,

एइ—लाजुक ललना सारि सारि गम काँपिछे अहर्निश,

एइ - रसे टलमल डालिमेर मृदु हासि,

एइ—शाखाय शाखाय छोट छोट आम दुलछे मधुर दोला,

एइ—जल-भरा नदी छुटिया चोलेछे कुन्तल-ढेड एलाये,

एइ - जलेर सेतारे भर्नार गान बाजिछे चित्त दोलाये,

एइ—मयनार नटखटी, तोतार मधुर बुलि,

मयूरेर केका आर भ्रमरेर गुनगुन,

बिजुलीर चमकन, बादलेर गरजन,

जोनाकिर आलोछाया, भिंभिर भुमुर तान

एइ—अबोध शिशुर मुखे आधो आधो बला,

दामाल छेलेर एइ निर्भीक चला,

चपल चटुल जत तरुनीर दल,

चाँद मुख निये तारा हासिछे केबल ।

कपोतेर गीति आर ढोलकेर दुक दुक, वैष्णव कबिदेर रागिनी,

जलभरा गागरीर तरल मधुर ध्वनि, चुपि चुपि राधा अभिसारिनी,

एरा कि सकले हाय रनदैत्येर घाय मृत्युर कोले ढोले पोड़वे ?

श्यामल - प्रान्तरा रम्य बसुन्धरा रिक्त स्मशान-रूप धोरवे ?

स्मरिया आपन प्रिया उत्सुक पापिया आर कभु कल्लतान लबेना ?

काननेर शाखे शाखे कोकिलेर कुहु कुहु आर कि ध्वनित कभु हबेना ?

आमि शुधु भाबि —

आमि शुधु भाबि जेइ इतिहास महाकाल लिखे चोलेछे,
से लेखार कालि रक्ते मेशानो हबे कि ?

सूर्ज उठिबे शबेर पाहाड़' परे ?

ध्वंसेर माम्हे चन्द्र कि केंदे उठबे ?

शिशिरेर भये फुल कभु आर फुटबेना ?

सूर्ज किरन दासी हबे किगो आंधारेर ?

सोनार शिकल पोरबे कि महाबिप्लव ?

स्मशानेर बुके शान्ति मिलिये जाबे ?

भलगार धारा मरुपथे जाबे हारिये ?

गंगा कि जाबे सुकिये ?

जोगी हिमालय माथा नत कोरे कोरबे कि कभु कुर्निश ?

ककेसासे कि गो आबार आसिबे भंम्हा ?

आमि शुधु भाबि—

आमि शुधु भाबि आर भाबि—शस्य खेत्रे जे फुल फुटिछे,
अकाले भरिबे तारा संगीनेर तीखून आलिगनो ?

मृत्तिकार बुके जारा फलियेछे सोनार फसल,

टैंक मेशिनेर मुखे बलिदान हबे कि तादेर ?

सीमन्ते सिंदूर पोरि नब बन्धू आसियाछे घरे,

हातेर होलुद जार ऐखनो हर्यनि खीयमान,

नम्र मुख खानि जार ऐखनो काँपिछे लज्जा भरे,

रन-दानबेर हाते से किगो कोरिबे आत्मदान,

जार बुक भोरे आसे मातृत्वेर आसन्न आशाय,

निहत शिशुर मुखे से कि गो कोरिबे स्तनदान ?

आमि शुधु भाबि—

आमि शुधु भाबि शाओन आकाशे मिलबे कि गुली बर्षण ?

उतसब राते देखा देबे आसि नर पशु भीमदर्शन !

फुल फटिबेना ? बनेर शाखाय फुट्बे कि कालो अंगार ?

भ्रमर तुलिबे ललित मधुर भंकार ?

स्मशानेर घाटे गोंगाबे कि हाय असहाय एका वृद्ध ?

गोला बारुदेर प्रसाधने हबे जौबन समृद्ध ?

मानबता जाबे हेरे ?

जुग-संचित अमृत-भांड दानब लोइबे केड़े ?

तबे कि गो एह मतो

शेष होये जाबे नोतुन जुगेर नोतुन काहिनी जत ?

चाणक्य मार्कस गान्धी सुभाष लेनिन स्टालिन एंगेल्स

जाँदेर कंठ जुग जुग हबे खनित,

तुलसी होमर मीरा सूरदास मिलटन ओ कालिदास

आजिओ जाँदेर बीणार ललित मंकार अनुरनित,

आमि शुधु भाबि लेखनी ताँदेर तखनो घुमिये थाकबे

जबे— शान्तिर नीड़ पर्ण कुटीर अग्निशिखाय जोलबे ?

आमि— निश्चिन जानि ताँदेर कंठ गर्जन कोरे उठबे

जबे— पुरनारीदेर अपमान लागि शयतान छुटे आसबे ?

आहतबकखे एशिया जबे कोरिवे आर्तनाद

थाकबे तखनो बल्मीक स्तूपे बाल्मीकि मुनि बोसि ?

जबे— शेष होये जाबे कोराणेर महामंत्र

मौन रबे कि कबिबर फिरदौसी ?

मुन्दर जबे धुलाय लोटावे असुन्दरेर कोपे

साहित्य कि गो शौखीन होये थाकबे ?

जबे— मुखेर अन्न बन्ध थाकबे लौहेर सिन्दुके

बिप्लबवीज अंकुर होये जागबे ।

वाह -- किसानेर हाते भोलसे उठेछे कारते,

वाह — हातुड़ीर चुके शान दिथे चले मजदुर,

ए देखे चये निर्मल नभे नोतुन तारका जले,

ए देखे चये नोतुन मानुष जागे धरनीर कोले ।

सृष्टिर काज एगिये चोलेछे एगिये,

ओनुबम आर डौलारेर जोरे निरुद्ध करा जाबेना ।

घरे घरे आज शान्तिर दूत बोल छे —

“जुद्ध हबेना, हबेना जुद्ध हबेना ।”

के
चार उपादेय प्रकाशन

—*❀*—

(१) कलकत्ता के उर्दू कथाकार—मूल्य २।।

भूमिका लेखक: शायरे-इंक्विलाब जनाब जोश मलीहाबादी

[फोर्ट विलीयम कालेज से लेकर आज तक का प्रामाणिक इतिहास]

(२) कलकत्ता के हिंदी कथाकार—मूल्य २।।

[फोर्ट विलीयम कालेज से लेकर सन ३० तक का प्रामाणिक इतिहास]

प्रस्तुत पुस्तकों को अपने सार्वजनिक तथा निजी पुस्तकालयों के लिये मंगाने की कृपा करें। इन पुस्तकों की सभी विद्वानों ने प्रशंसा की है।

(३) प्राण-गीत (प्रथम भाग) —मूल्य २।

कविवर नीरज की श्रेष्ठ ५६ कविताएं और अपनी कविताओं के

सम्बन्ध में कवि का प्रथम ऐतिहासिक वक्तव्य।

(४) महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ—मूल्य ५।

कुछ प्रतियां शेष हैं। शीघ्र ही यह ग्रन्थ 'आउट-आफ-प्रिंट'

हो रहा है।

[हिन्दी की एक नई चयनिका व संस्था]

कलकत्ता ७